बुनियादी शिक्षाः डॉ. कृष्ण कुमार के कुछ विचार

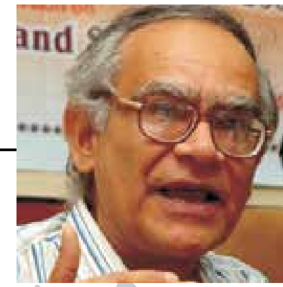

लर्निंग कर्व भाग्यशाली है कि हमें शिक्षा तथा गाँधी जी की नई तालीम की प्रासंगिकता पर डॉ. कृष्ण कुमार के विचारों को पुनर्प्रकाशित करने का मौका मिला है। जयपुर की दिगन्तर संस्था ने उदारता दिखाते हुए हमें इन उद्धरणों को पुनर्प्रकाशित करने की अनुमति दी है। यह लेख, मूलतः, मई 1998 में, 'बुनियादी शिक्षा की प्रासंगिकता' शीर्षक से 'विमर्श' पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। दिगन्तर में आयोजित हुई व्याख्यान माला में यह तीसरा व्याख्यान था (यह व्याख्यान 10 जनवरी, 1998 को दिया गया था)।

आज की तारीख में, बुनियादी शिक्षा के बारे में बात करने में कई समस्याएँ हैं। सबसे बड़ी समस्या तो यही है कि इसके साथ गाँधी का नाम जुड़ा हुआ है। गाँधी जी से जुड़ी हुई कई लोकप्रिय छवियाँ आज के समाज में फैली हुई हैं; इन छवियों की फिर से पड़ताल नहीं की जाती। सिर्फ प्रतिष्ठित स्तर पर दिखने वाली छवियों को ही देखते रहना, गाँधी की महानता के गीत गाते रहना, उन्हें भगवान का दर्जा देना या देवता तुल्य मानना, इन सब बातों में एक प्रकार की जिद दिखाई देती है। दूसरी तरफ, यह स्थिति उनकी राह से हमारे अलग हट जाने से भी जुड़ी हुई है, क्योंकि उस राह को तो बहुत पहले ही छोड़ दिया गया था। यह चर्चा कभी अन्य रूप भी लेती रही है, जिनमें से एक यह भी है कि आधुनिक भारत ऐसा है क्योंकि उसने नेहरू का मार्ग अपनाया है, गाँधी जी का मार्ग बिलकुल अलग होता। या कि, नेहरू को चुनना गाँधी जी की भूल थी। जब भी गाँधी जी से जुड़े किसी विचार पर चर्चा शुरू होती है, तो फिर यही सवाल शुरू हो जाते हैं कि 50–60 साल पहले की परिस्थितियों में यह विचार जिस रूप में उभरा था हमें उस रूप की पवित्रता के बारे में लोगों को समझाना होगा। फिर यहीं से एक लम्बा–चौड़ा व्याख्यान शुरू हो जाता है। अगर आप गाँधीवादी हैं या इस तरह की चर्चाओं में आपकी रुचि है तो ही आप इस तरह के व्याख्यान को सह सकते हैं, अन्यथा नहीं। आज की परिस्थितियों में इस विचार को समझना बहुत आसान नहीं है।

मैं खुद भी बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तों पर चलने वाले स्कूल से पढ़ा हूँ। आज मैं उन वर्षों के बारे में बहुत वस्तुपरक होकर तो नहीं सोच सकता क्योंकि आप जैसे–जैसे बड़े होते जाते हैं और बचपन पीछे छूटता जाता है, तो आप बचपन की बातों को बहुत वैज्ञानिक ढंग से तो नहीं देख सकते। वह सब यादों में बस जाता है। तो मैं यह तो नहीं कहूँगा कि मैं अपने अनुभव से यहाँ कुछ कह रहा हूँ। पर मेरे लिए यह बताना बहुत जरूरी है कि मैंने ऐसे स्कूल देखे हैं देश भर में ऐसे सैकड़ों, हजारों स्कूल रहे हैं, और इनमें से कई किसी न किसी रूप में अभी भी मौजूद हैं। कुछ तो सिर्फ नाममात्र के लिए चल रहे हैं, पर कुछ में, हमें आज भी कुछ विस्तृत रूप में बुनियादी शिक्षा देखने को मिल जाती है। यदि हम सब इसमें कुछ रुचि दिखाएँ, तो ऐसे संगठनों के समग्र रूप को समझने का छोटा–सा प्रयास करना सम्भव हो सकेगा। मैं आपको कुछ बताऊँ, उसके बजाय ऐसा करने से आपके मन में गाँधी जी के इस विचार के बारे में बेहतर तस्वीर बन पाएगी। मैं आज यहाँ बहुत छोटी–सी छवि बनाने आया हूँ और उसकी अन्तर्निहित सुन्दरता को आपके सामने रखना चाहता हूँ।

पिछले 50–60 सालों में, शिक्षा के दर्शन में, और शिक्षा के दर्शन को इस्तेमाल करने के तरीकों में बुनियादी शिक्षा का प्रस्ताव कई प्रकार से अपनी परछाईं देखता रहा है। ऐसा नहीं है कि बुनियादी शिक्षा के प्रस्ताव में वास्तव में ऐसी बातें कही गई हों। लेकिन शिक्षा के दर्शन में, खासतौर पर, इस पूरे दौर में इस विषय पर जिस तरह के लेख लिखे गए हैं, उनमें किसी न किसी रूप में बुनियादी शिक्षा की मौजूदगी रही है – न सिर्फ भारत में बल्कि दूसरे देशों में भी। वैसे बुनियादी शिक्षा के प्रस्ताव

में ऐसा कुछ अनोखा नहीं था जिसे गाँधी जी कहीं से तोड़कर ले आए हों। उन्होंने जो कुछ भी कहा था वह सामान्य जीवन के लिए प्रासंगिक था।

प्रारम्भ से ही बुनियादी शिक्षा के विचार के साथ तीन बड़ी बातें जुड़ी रही हैं। इन तीन विचारों से हम इतने परिचित हो चुके हैं, कि हम यह सोच सकते हैं कि, "अरे, यह सब तो हमें पहले से ही पता है, इसमें नया क्या है?" और यही बात खतरनाक है। यह कहा जा सकता है कि हमने बुनियादी शिक्षा के प्रस्ताव की प्रतिध्वनियों को इतने स्वरूपों में सुना है, कि उन्हें अलग करना या उनकी खूबियों के बारे में अलग–अलग बात कर पाना, गैर–जरूरी है और सम्भवत: व्यर्थ भी है....। इसीलिए मैंने आपको इतनी सारी चेतावनियाँ दी हैं। दर्शनशास्त्र के जगत में, कोई भी विचार पुराना नहीं पड़ता, न ही वह उसी स्थिति में बना रहता है, जहाँ शुरू में था – इन दोनों बातों को दिमाग में रखना बहुत जरूरी है। भले ही कोई 2500 वर्ष पुराना विचार हो, भले ही गौतम बुद्ध का कोई विचार हो, भले ही अरस्तु का कोई विचार हो या कोई ऐसा विचार हो जो हमारे समाज में अभी–अभी आया हो – वह विचार कभी पुराना नहीं पड़ता, भले ही एक नहीं, हजारों पीढ़ियाँ उसे आजमा चुकी हों। और भले ही उन्होंने यह राय दी हो कि हम आजमाकर देख चुके और इसमें कुछ भी सार नहीं है! इसके बाद भी, उस विचार में एक चमक बनी रहती है। दूसरी तरफ, कोई भी विचार वह नहीं रह जाता जो वह पहली बार प्रस्तावित किए जाते वक्त था, क्योंकि बीच के समय में वह विचार अन्य कई विचारों में जीता है। किसी विचार की, उसकी उत्पत्ति से आगे जाने की क्षमता का अनुभव उस विचार को निरन्तर पूरे परिदृश्य में फिर से स्थापित कर देता है।

ये तीन बिन्दु हैं – पहला, स्कूल में हाथों से काम करना सिखाया जाना चाहिए। दूसरा, स्कूल की शिक्षा बच्चे के परिवेश से जुड़ी होना चाहिए। बहुत सरल बातें हैं ये। और तीसरी बात – स्कूल में जो भी सिखाया जाए, जो भी कौशल सिखाए जाएँ, बच्चों को ज्ञान के जिन भी पहलुओं से परिचित कराया जाए – वे एक दूसरे से पृथक नहीं होना चाहिए, बल्कि एकीकृत/ समग्र होना चाहिए। वे आपस में जुड़े होना चाहिए। इन तीन बातों (काम, स्थानीय परिवेश का महत्त्व और पाठ्यक्रम को समग्र बनाने का प्रयास) को कहीं न कहीं, किसी न किसी परिस्थिति में, देश के अन्य भागों में या राज्य स्तर पर करके देखा जा चुका है। यहाँ शायद एक ही बात जोड़ी जाने लायक है, वह यह कि गाँधी जी के बुनियादी शिक्षा के मूल प्रस्ताव में तीसरा बिन्दु हस्तकौशल के सन्दर्भ में उठाया गया था। उन्होंने इस समग्र रूप की परिकल्पना किसी विचारधारा के सन्दर्भ में नहीं उठाई थी, न ही किसी मनोवैज्ञानिक सन्दर्भ में उठाई थी, बल्कि उन्होंने हस्तकला/ हाथ के कौशलों के रूप में उठाई थी। चूँकि स्कूल में हाथों से काम करने के उनके पहले बिन्दु का अर्थ यह नहीं था कि, आपको स्कूल में हाथों से काम भी करना चाहिए, बल्कि हाथ से किया जाने वाला काम स्कूल का केन्द्रीय विषय होना चाहिए। इसे इतना महत्त्वपूर्ण होना चाहिए कि स्कूल की अन्य सभी तरह की पारम्परिक गतिविधियाँ, जिसमें विभिन्न प्रकार की शिक्षा और कौशल शामिल रहते हैं, सबको हाशिए पर जाना होगा, गौण होना पड़ेगा और स्कूल की शिक्षा का मुख्य ध्यान हस्तकौशलों पर होगा। जरूरी नहीं कि किसी एक ही हस्तकौशल पर हो, लेकिन कम से कम किसी एक पारम्परिक हस्तकौशल पर हो। अच्छा होगा कि वह हस्तकौशल ऐसा हो जो स्कूल के परिवेश में उपलब्ध हो। वह हस्तकौशल स्कूल का केन्द्रीय उद्यम होना चाहिए। उसके इर्द–गिर्द ज्ञान के पाठ्क्रम के विभिन्न क्षेत्रों को आपस में बुना जा सकता है और इस बुनाई को ही हम बुनियादी शिक्षा के सन्दर्भ में समग्र शिक्षा का नाम दे सकते हैं। यह बुनावट बच्चे के व्यक्तित्व की किसी सार्वभौमिक मनोविज्ञान की अवधारणा नहीं है, न ही यह कोई राष्ट्रीय विचारधारा है, बल्कि यह बुनावट उस कौशल से निकलना चाहिए, जिसे स्कूल के केन्द्रीय उद्यम के रूप में चुना गया हो। बुनियादी शिक्षा के अन्तर्गत और भी जरूरी पहलू थे, लेकिन उन सबका यहाँ जिक्र करना जरूरी नहीं है। पर जिस एक पहलू का खासतौर से जिक्र किया जा सकता है, वह उत्पादकता है। यदि आप इतिहास पर नजर दौड़ाएँ, तो पाएँगे कि शिक्षा के अन्य पहलुओं को तो महत्त्व दिया गया लेकिन इस केन्द्रीय मुद्दे पर बिलकुल ध्यान नहीं दिया गया। आपने स्कूलों में 'काम के अनुभव' के बारे में सुना होगा, या कुछ अन्य ऐसी बातों के बारे में सुना होगा जिन्हें 'सामाजिक रूप से उपयोगी उत्पादक कार्य' (जिसके हर शब्द को आप

सन्देह के साथ देख सकते हैं) के अन्तर्गत रखा जाता है। ये सभी चीजें बुनियादी शिक्षा के विचार को इस्तेमाल किए जाने के बाद अस्तित्व में आईं और उसकी स्मृति में इन्हें फिर पाठ्यक्रम में शामिल किया गया। वे अभी भी चल रही हैं। इसलिए उन सभी पहलुओं की चर्चा करना जरूरी नहीं है क्योंकि वे सभी बुनियादी शिक्षा के मूल प्रस्ताव के आधार पर किसी न किसी रूप में बने ही हुए हैं। इसी प्रकार से मातृभाषा के महत्त्व को भी इसमें स्वीकारा और शामिल किया गया था। जब आप स्थानीय परिवेश की बात करते हैं, तो मातृभाषा उसमें तर्कसंगत रूप से आ ही जाती है और उसका अलग से जिक्र करना आवश्यक नहीं है। लेकिन फिर भी गाँधी जी ने उसे महत्त्व दिया और फिर से उसका उल्लेख किया। मूल प्रस्ताव में उसे निश्चित तौर पर महत्त्व दिया गया था। वहाँ उसका सन्दर्भ यह था कि यदि शिक्षा को आसपास के परिवेश में बोया जाना है, तो हमारे सामने उसका स्वाभाविक साधन केवल मातृभाषा ही हो सकती थी।

ये तीन बिन्दु जो बुनियादी शिक्षा के मूल प्रस्ताव का हिस्सा थे जिन्हें मैंने आपके सामने सिर्फ दर्ज करने की खातिर प्रस्तुत किया है। बीते हुए वक्त पर बार–बार ऐतिहासिक किस्म की नजर डाले बगैर, हमें सरल विश्लेषण की भावना से इस प्रस्ताव की पड़ताल करना होगी, बल्कि पड़ताल करने के बजाय उसका मूल्यांकन करना होगा, कि यदि आज शिक्षा के मुख्य सन्दर्भों में बुनियादी शिक्षा को सजा, सँवारकर, चमकाकर प्रदर्शित किया जाए तो वह कैसी दिखाई देगी? यदि उसके वृक्ष को यहाँ दिगन्तर में रोपा जाए तो उसमें से कैसी पत्तियाँ निकलेंगी? किस प्रकार के फूलों का उसमें से खिलना सम्भव होगा? उसे सुरक्षित रखने के, पालने के, उस पर फूल खिलाने और उसे फलीभूत करने के उपाय क्या होंगे? ये सारी बहसें उसमें से निकल सकती हैं।

हम चाहते हैं कि बचपन से ही बच्चा प्रमाणपत्रों की महानता के प्रति सजग हो जाए और उसे स्वीकारे, इसलिए कक्षा 1 से ही उन्हें प्रमाणपत्र मिलना शुरू हो जाते हैं। हम चाहते हैं कि बच्चे घण्टी बजने के महत्त्व को समझें – जैसे ही घण्टी बजती है तो आपको एक काम करना बन्द करके दूसरा काम शुरू करना होता है। घण्टी के बजने का मतलब होता है कि, हमसे ज्यादा ताकतवर कोई व्यक्ति हमसे कह रहा है कि तुम्हें अब यह काम नहीं करना चाहिए, चाहे वह आपको कितना ही रुचिकर क्यों न लग रहा हो। अब तुम वह करो जिसके लिए घण्टी बजाई गई है। तो घण्टी बजती है और हमें ऐसी स्थिति में ले जाती है जिसमें हम घण्टी को एक घण्टी–केन्द्रित समाज के प्रतीक के रूप में स्वीकार कर चुके होते हैं। असली घण्टी तो वह है जो हमारे लिए स्वतंत्रता की कोई गुंजाइश नहीं छोड़ती। पिछले 300 वर्षों से औद्योगिक समाज की बजती हुई घण्टी वह शक्तिशाली साधन है जिसने हमें बाँध रखा है। उस घण्टी का महत्त्व बच्चों को समझाने के लिए, आधुनिक स्कूल बच्चों की 3–4 साल की उम्र से ही उनके लिए स्कूल की घण्टी बजाना शुरू कर देता है, जिसके चलते 18–20 वर्ष की आयु पर पहुँचने तक वे घण्टी के आदी हो चुके होते हैं।

बच्चों के सन्दर्भ में यह कहने के बाद, अब मैं शिक्षकों के बारे में बात करना चाहता हूँ। बुनियादी शिक्षा में निहित प्रमुख विचारों में से एक यह है कि हम किस प्रकार के कौशलों की बच्चों से अपेक्षा कर सकते हैं, वे किस तरह की जिम्मेदारी ले सकते हैं, और उनके लिए क्या उपयुक्त है और सम्भव है, और उन्हें जिम्मेदारी देने में कुछ गलत नहीं है। उन्हें उनके परिवेश में पाए जाने वाले किसी कौशल का उपयोग करते हुए अपने हाथों से कुछ भी बनाने दो। वे जो भी कौशल सीखते हैं, उसमें उन्हें महारत हासिल करने दो। उस विशेष योग्यता से मिलने वाले साधन–सम्पन्नता के बोध से प्राप्त होने वाली इस अनुभूति का आनन्द लेने दो – कि मैं यह कर सकता हूँ और यह मैंने खुद किया। पर आपको इन गुणों पर शिक्षकों के सन्दर्भ में भी विचार करना होगा। उन्हें यह मालूम होना चाहिए कि वे क्या कर सकते हैं और उन्हें भी अपने संसाधनों की सम्पन्नता का बोध होना चाहिए, और यह कह सकना चाहिए कि "मैं यह कर सकता हूँ"। बुनियादी शिक्षा के आधार प्रस्ताव में भी काम को मुख्य रूप से हस्तकला के कौशल की तरह ही परिभाषित किया गया है, पर ऐसा कोई कारण नहीं है कि हम काम को ज्यादा बड़े सन्दर्भ में परिभाषित नहीं कर सकते। आखिरकार, बुनियादी शिक्षा के विचार मूल रूप से जीवन के काम से सम्बन्धित हैं, अर्थात ऐसे कामों से जो जीवन जीने में सहायता करते हैं। उन सभी कामों को नियमित रूप से और कुशलतापूर्वक किए बगैर,

जीवन को नहीं जिया जा सकता। ऐसे कामों को करने में, जिनमें जिम्मेदारी निहित होती है, शुरू से ही बच्चों को शामिल करना ही बुनियादी शिक्षा का मूल विचार है। ऐसे कामों में उन्हें शुरुआत से ही जिम्मेदारी दी जा सकती है। इसी कारण हम ऐसे कामों की परिभाषा पूरे दिल से कर सकते हैं। चाहे वह स्कूल की सफाई करना हो, शौचालय का रखरखाव करना हो। यदि पानी की टंकी हो तो उसमें पानी के भण्डारण का ध्यान रखना और यदि स्कूल में पानी न हो, तो उसकी व्यवस्था करना। ये सभी यों तो छोटे–छोटे काम हैं, परन्तु आज की शिक्षा व्यवस्था ने ऐसे कामों को अपनी पाठ्यचर्या में शामिल करना छोड़ ही दिया है और वह उस दिशा में कोई प्रयास नहीं कर रही है।

एन.सी.ई.आर.टी. का छठा सर्वेक्षण हाल ही में प्रकाशित किया गया है। तीसरे, चौथे और पाँचवें सर्वेक्षणों का निरीक्षण करके उनसे उसकी तुलना करने पर हम पिछले दस वर्षों में हुई प्रगति का आकलन कर सकते हैं। एन.सी.ई.आर.टी.में काम करने वालों को छोड़कर, कोई भी पानी, शौचालयों और ब्लैकबोर्डों की उपलब्धता की दृष्टि से जो मामूली प्रगति हुई है, उस पर गर्व महसूस नहीं करेगा। जैसे ही कोई किसी प्राथमिक स्कूल में प्रवेश करता है, ये चीजें या उनका अभाव, साफ दिखाई देता है। आज भी हम यही कहते जाते हैं कि आधे से अधिक स्कूल ऐसी कोई जगह नहीं दिखा सकते जिसका बच्चे सम्मानपूर्वक पेशाबघर की तरह उपयोग कर सकें। हमारे संविधान में एक धारा 395 है जो कहती है कि राज्य का नीति निर्देशक सिद्धान्त यह सुनिश्चित करना होगा कि बच्चे आदर और गरिमा के साथ जीवन जिएँ। मैं सोचता रहता हूँ कि किसी को ऐसे स्कूल में घूमने पर कैसा अनुभव होगा जबकि स्वयं उसके लिए पेशाबघर की तरह इस्तेमाल करने के लिए अलवर के बस–स्टैंड पर भी कोई उचित सुविधा नहीं है। पेशाबघर और शौचालय की समस्याएँ पिछले 60 वर्षों से जस की तस बनी हुई हैं। जब हम इन समस्याओं पर विचार करने लगते हैं तो हमें आश्चर्य नहीं होता कि सुश्री माधुरी सहाय, जो एक बहुत बड़ी शिक्षिका हैं, ने शौचालयों के निर्माण, और उनकी साफ–सफाई के रखरखाव को इतना महत्त्व दिया कि उसे अपने–आप में एक अलग कौशल का नाम दिया। आप निश्चित रूप से स्वयं गाँधी जी के जीवन में शौचालयों के महत्त्व के बारे में जानते ही होंगे। उनके राजनैतिक कार्यक्रम का केन्द्रीय विषयसूत्र यही था कि उन जातियों के जीवन का उत्थान कैसे किया जाए जो अपरिहार्य रूप से शौचालयों से जुड़ी हुई हैं। क्या वर्तमान हालात हमेशा चलते रहेंगे जिनमें शौचालयों से सम्बन्धित सारे काम और उनसे जुड़ी मजबूरियाँ पुरानी जाति व्यवस्था का ही हिस्सा बनी रहेंगी? या कि ऐसा काम सामान्य काम के दायरे में आना चाहिए? ऐसी गतिविधियों में आत्मनिर्भर होना उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि कोई डिग्री हासिल करके अपनी जीविका कमाने में सक्षम होना। जहाँ तक शिक्षक का सम्बन्ध है, इस प्रकार की पहल करना स्कूल चलाने के लिए बेहद जरूरी होता है। इन सभी प्रयासों में, पहल की, स्वाबलम्बन की और साधनों की सूझबूझ की भूमिका बुनियादी शिक्षा की भावना में ही अन्तर्निहित है।

वर्तमान में स्कूलों में बच्चों को मध्यान्ह भोजन प्रदान करने का एक कार्यक्रम बड़े पैमाने पर चल रहा है। हमने उसे एक बड़ी जिम्मेदारी के रूप में चलाया है और यह काम कुशलता पूर्वक करने के लिए प्रशिक्षित कर्मचारियों की व्यवस्था की है। बुनियादी शिक्षा की दृष्टि से यह एक चुनौती है कि किसी शिक्षक को इस तरह से प्रशिक्षित किया जाए कि वह मध्यान्ह भोजन के लिए आवश्यक सभी सामग्री की व्यवस्था करने में और उसे नियमित रूप से प्रदान करने में स्वयं को सक्षम महसूस कर सके। उसे किन्हीं खास विक्रेताओं या खास कम्पनियों से ही इन चीजों को खरीदने के लिए बाध्य नहीं होना चाहिए। न ही उसे पूरी तरह से सरकारी अनुदानों पर, और सरकारी बन्धनों पर निर्भर रहने के लिए बाध्य किया जाना चाहिए। उसे आधुनिक वैज्ञानिक शिक्षा के अनुसार पहचाने गए सभी संसाधनों और सामग्रियों की सुरुचिपूर्ण और सुन्दर ढंग से व्यवस्था कर सकना चाहिए।

जो पुरानी शिक्षा व्यवस्था मौजूद है उसके माहौल में, जहाँ साधनों की सम्पन्नता पर तो जोर दिया गया है, वहीं उसमें सुन्दरता और सौन्दर्य बोध को सिखाने की कभी कोई कोशिश नहीं की गई है। इस तथ्य को कई जगहों पर देखा गया है। उदाहरण के लिए, सौन्दर्य बोध का मतलब है चीजों को इस प्रकार आयोजित करना कि उसमें सहज सौन्दर्य झलकता हो। पुरानी व्यवस्था में हस्तकौशल के सौन्दर्य के बारे में एक प्रकार की

उदासीनता और खराब कौशल को सहन करने की गहरी परम्परा दिखाई देती है। दस्तकारी की कोई चीज बनाने या एक किताब लिखने के सन्दर्भ में कौशल के उपयोग की मूल भावना एक सुन्दर वस्तु निर्मित करने की होती है। यदि हम उसका दायरा फैलाना चाहते हैं, उसे इस बुनियादी शिक्षा का हिस्सा बनाना चाहते हैं, तो जिस शिक्षक को ऐसी शिक्षा वाला स्कूल चलाने की जिम्मेदारी दी जाए, उसे एक गहरे सौन्दर्यबोध को आत्मसात करने के लिए प्रशिक्षित किया जाना चाहिए, ताकि फिर वह अपने सुरुचिपूर्ण ढंग से स्कूल का रखरखाव कर सके।

शिक्षा किस चीज की बुनियाद हो सकती है? इसे अपना केन्द्रीय मुद्दा बनाकर आगे बढ़ते हुए, हम विषयवस्तु के सवाल पर गौर कर सकते हैं। हम एक रास्ता खोज सकते हैं यदि हम उसे मनोविज्ञान के दृष्टिकोण से देखें। मैंने मनोविज्ञान की बात संक्षेप में और शायद गैरवाजिब तरीके से पीछे की थी। पर उससे यह बात निकलती है कि शिक्षा को बच्चे के व्यक्तित्व की बुनियाद बनना होगा। बुनियादी शिक्षा का मतलब ऐसी शिक्षा होना चाहिए जो बच्चे के व्यक्तित्व की जमीन तैयार करे। उसमें अनिवार्य रूप से वे सभी पहलू और पूर्वाग्रह होंगे जो मनोविज्ञान की दृष्टि से बच्चे को देखने में निहित होते हैं। बचपन वह अवस्था होती है जब बच्चे का व्यक्तित्व वह आकार लेता है जिसके साथ बच्चा वयस्क जीवन में प्रवेश करता है। बच्चे और जीवन के बीच में एक प्रकार का टकराव और द्वैत होता है और वह बच्चे और समाज के बीच में भी होता है। एक व्यक्ति और समाज के बीच में पहले से ही एक टकराव मौजूद रहता है। इस सभी बातों को ध्यान में रखते हुए, हमें एक ऐसी बुनियाद रखना होगी जो बच्चे को समाज में रहने में मदद करे।

बुनियादी शिक्षा के मामले में, बात सरल है क्योंकि उसका पूरा क्षेत्र ही बच्चों के सामूहिक अनुभव के बारे में है। यदि हमें पेड़ों के बारे में जानने की जरूरत है तो आसपास के इलाके में लगे पेड़ों का विभिन्न मौसमों में अध्ययन करके उनकी जानकारी इकट्ठी की जा सकती है। इस प्रकार एकत्रित की गई जानकारी को बुनियादी शिक्षा के सन्दर्भ में वैध माना जा सकता है। फिर इसमें अन्य स्रोतों से प्राप्त ज्ञान को जोड़ा जा सकता है, जिसे ऐसा विशेष ज्ञान माना जा सकता है जिसका बच्चे के व्यक्तित्व और समाज से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। अतः समाज का निर्माण करने के सन्दर्भ में ही बुनियादी शिक्षा वास्तव में बुनियादी होती है। यह बात न केवल बच्चे के व्यक्तित्व के सन्दर्भ में लागू होती है, बल्कि समाज के नवीनीकरण के लिए भी लागू होती है। गाँधी के जीवन और विचारों में उपनिवेशवाद की दुनिया को नकारा गया है। उसके प्रति उनके विचारों में गहरी असहमति है। इसलिए, यदि बुनियादी शिक्षा में गलत बातों से असहमत होना नहीं सिखाया जाता, तो उसे बुनियादी नहीं कहा जा सकता। आजादी के 20 से 30 वर्ष बाद बुनियादी शिक्षा की जो नीति निकलकर आई, उसमें यह एक बड़ी खामी बनी रही। उसमें असहमति के लिए कतई कहीं कोई जगह नहीं थी। किन्ही भी ऐसे मुद्दों के लिए उसमें कोई गुंजाइश नहीं छोड़ी गई थी जिनको लेकर सरकार और समाज के बीच में टकराव की सम्भावना हो सकती थी।

बुनियादी शिक्षा के सम्बन्ध में सरकार की भूमिका क्या होना चाहिए? अन्ततः, बुनियादी शिक्षा समाज की स्वायत्तता की तेज आवाज में की गई उद्घोषणा के सिवाय और कुछ नहीं है। यह समाज के साथ मित्रतापूर्ण और सम्मानजनक ढंग से सामन्जस्य बनाने के लिए सरकार को दी गई चुनौती है। राजनीति और राजनैतिक तंत्र के द्वारा लिए गए निर्णयों के साथ बुनियादी शिक्षा का सम्बन्ध अन्तर्निहित रूप से प्रतिस्पर्धात्मक है। यह सोचना तर्कसंगत है कि यदि बुनियादी शिक्षा विद्यार्थियों को उनके मौजूदा परिवेश से जरूरी होने पर असहमति व्यक्त करने के लिए तैयार नहीं कर सकती तो वह शिक्षा व्यवस्था स्वयं ही दोषपूर्ण है। यदि शिक्षा हमें आज दुनिया जैसी है उसी में जीने के लिए ही प्रशिक्षित करती है, तो इसका मतलब है कि दुनिया को बदला नहीं जा सकता, और हमें उसी तरह से जीते रहना होगा जैसा कि दुनिया का ढर्रा है। हमें उसी दुनिया में आजीविका कमाने के साधन, और जीने के लिए जरूरी गुण हासिल करना होंगे। यदि उसके लिए गुलामी करने की जरूरत होती है तो हम उसे सीखते हैं। यदि जीवन जीने के लिए प्रतिस्पर्धा आवश्यक है, तो हम स्पर्धा करना सीख लेते हैं। मौजूदा शिक्षा व्यवस्था के साथ दुनिया को बदला नहीं जा सकता। यदि बुनियादी शिक्षा को गाँधी की परम्परा के अनुरूप होना है, तो असहमति के अधिकार को धार्मिक जोश जैसी भावना के साथ स्वीकार किया जाना

जरूरी है। जीवन जैसा है, उसे वैसा ही जीने के लिए मैं अभिशप्त नहीं हूँ, बल्कि मैं उसे जैसा चाहता हूँ वैसा बना सकता हूँ। अपने जीवनकाल में, मैं अपने जीने के ढंग से जिस हद तक संसार को बदल सकता हूँ, उसे उतना बदलने में में समर्थ हूँ।

डाक्टर कृष्ण कुमार दिल्ली विश्वविद्यालय में शिक्षा के प्रोफेसर हैं। सन 2004 से 2010 तक उन्होंने एन.सी.ई.आर.टी. के निदेशक के रूप में कार्य किया। उनके नेतृत्व में ही राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा – 2005 तैयार की गई जो कि भारत में प्राथमिक शिक्षा से सम्बन्धित सबसे महत्त्वपूर्ण दस्तावेजों में से एक है। वे स्वयं भी मध्य प्रदेश के टीकमगढ़ स्थित एक नई तालीम के स्कूल के विद्यार्थी थे। उन्होंने गाँधी जी की सामाजिक रूपान्तरण की कल्पना के अंग के रूप में उनकी शिक्षा प्रणाली के बारे में कुछ अत्यन्त स्पष्ट और अन्तर्दृष्टीपूर्ण निबन्ध लिखे हैं।